आर्य्यधर्म शिक्षा

कविराज रणवीर शास्त्री

ARORBANS PRESS BLOCK MAKERS
& PRINTERS ANARKALI LAHORE

आर्य्यधर्म्म शिक्षा ।

अर्थात्

बालकोपयोगी आर्यसामाजिक विषयों का अपूर्व संग्रह

लेखक—

कविराज विद्यारत्न

पण्डित रणवीर शास्त्री

प्रकाशक—

वजीरचन्द्र शर्मा

अध्यक्ष वैदिक पुस्तकालय, मोहनलाल रोड, लाहौर

सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०३०

वि० सम्वत् १९८७ दयानन्दाब्द १०६

मुद्रक—

लाला लालजीदास

ऐंग्लो ओरियण्टल प्रेस, चेम्बर लैन रोड, लाहौर ।

मूल्य =)॥

प्रथम बार १०००]

भूमिका

—*—
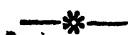
इस पुस्तक का उद्देश बालकों को आर्यसमाज सम्बन्धी विषयों का ज्ञान करना है। संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश है। इसके सिद्धान्त तर्क और विज्ञान के अनुकूल हैं अतएव सर्वोत्तम तथा माननीय हैं। इसने धार्मिक जगत् में अपूर्व क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। देश और जाति में सद्भावों का संचार कर स्वाधीनता का मार्ग प्रदर्शित किया है। आर्यजाति को जीवित तथा जाग्रत बना दिया है। जनता ने इसके सिद्धान्तों को ग्रहण कर दूरदर्शिता का परिचय दिया है। आर्यसमाज उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है। आर्यसिद्धान्तों के पढ़ने और मनन करने से बच्चे सभ्य सुशील और स्वदेशभक्त बन सकते हैं। इसीलिये उनके ज्ञान के लिये संध्या हवन महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज आदि ज्ञातव्य विषयों का सरल सुबोध तथा मनोरञ्जक भाषा में प्रतिपादन किया गया है। आशा है कि आर्यमहानुभाव पुस्तक का आर्य संस्थाओं में प्रचार कर मेरे उत्साह को बढ़ावेंगे, और त्रुटियों से सूचित कर कृतार्थ करेंगे।

लाहौर
ता० ६-६-३०

निवेदक—
रणवीर शास्त्री

ओ३म्

आर्य्यधर्म्म शिक्षा

सन्ध्योपासनविधिः

सन्ध्या—मन लगाकर ईश्वर की भक्ति करना संध्या कहलाती है। सायं प्रातः दोनों समय शुद्ध पवित्र होकर दर्भासन या ऊन का आसन अथवा चौकी आदि पर बैठ कर एकान्त स्थान में संध्या करनी चाहिये। जिस प्रकार शरीर के लिये भोजन आवश्यक है इसी प्रकार अन्तःकरण की शुद्धि, आत्मिकबल तथा ईश्वरज्ञान के लिये संध्या करनी आवश्यक है। संध्या करने से चित्त स्थिर, आत्मोन्नति अभिमान का नाश और बुद्धि तीव्र होती है। संध्या अवश्य करो। सन्ध्या न करने से महा पाप होता है।

ओ३म्—शब्द का अर्थ सर्वत्र, सर्वदा, और सर्वथा रक्षक है। इस एक नाम से परमात्मा के अनेक नामों का ग्रहण होता है, अतः यह सर्वोत्तम नाम है।

अथ सन्ध्या।

आचमनमन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१॥

तीन बार मन्त्र उच्चारण कर तीन आचमन करने चाहियें।

अंगस्पर्शः

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकर पृष्ठे ॥२॥

मार्जनमन्त्रः

ओं भूः पुनातु शिराशि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातुपादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरिस। ओं खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥३॥

प्राणायाममन्त्रः

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम् ॥४॥

अघमर्षणमन्त्राः

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोअर्णवः ॥१॥ ओं समुद्रादर्णवादधि सम्वत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥ ओं सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीं श्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

मनसापरिक्रमामन्त्राः

ओं प्राची दिगग्निरधिपति रसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म स्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

शेष पांच मन्त्रों में "तेभ्यो नमः से जम्भे दध्मः" तक का पाठ समझ लेना चाहिये ।

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस् तिराश्चि राजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो० ॥२॥ ओं प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो० ॥३॥ ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः । तेभ्यो० ॥४॥ ओं ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माष-

ग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो० ॥५॥ ओं ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो०॥६॥

उपस्थानमन्त्राः

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥ ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥२॥ ओं चित्रं देवाना मुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य आत्मा जगतस् तस्थुषश्च स्वाहा ॥३॥ ओं तच्चक्षु र्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीना स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥

गायत्री (गुरु, सावित्री) मन्त्रः

ओं भू र्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥

भावार्थ—हे परम पितः परमात्मन्! आपही प्राणाधार, दुःख नाशक और आनन्ददाता हैं। हम सब जगत् के उत्पत्तिकर्ता प्रकाशस्वरूप, ऐश्वर्य के दाता, कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय कराने हारे जगदीश्वर के पापनाशक तथा सर्वोत्तम प्रकाश

(तेज) का ध्यान करते हैं। हे परमेश्वर ? आप हमें उत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त बुद्धि प्रदान कीजिये।

समर्पण मन्त्रः

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय शिवतराय च ॥

सन्ध्योपासन विधिः समाप्तः ॥

प्रभु भक्ति का भजन १

ईश्वर का जप जाप रे मन, वृथा काहे को जन्म गवावे ॥१॥
दीनानाथ दयालु स्वामी, परगट सब जा आप रे ॥२॥
सर्व व्यापक की पूजा कर, दूर होवें दुःख ताप रे ॥३॥
कर सन्ध्या और पढ़ गायत्री, मिट जावें सन्ताप रे ॥४॥
छोड़ असत् और सत् को ग्रहण कर, नष्ट होवें सब पाप रे ॥५॥
खुश होकर प्रभु बिनती सुन ले, 'वेसर' करे विरलाप रे ॥६॥

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपसनाः

स्तुति—ईश्वर अथवा किसी दूसरे पदार्थ के गुणगान कथन श्रवण और सत्य भाषण करना होती है। स्तुति से प्रीति और गुण कर्म स्वभाव का सुधार होता है।

प्रार्थना—पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर अथवा सामर्थ्यवान् पुरुष से सहायता लेना कहलाती है, प्रार्थना से निरभिमान उत्साह और साहाय्य प्राप्त होता है।

उपासना—ईश्वर के ही आनन्दस्वरूप में आत्मा को मग्न करना कहलाती है। इससे परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है।

मन्त्राः

ओं विश्वानि देव सवित दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥ ओं हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य-द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ ओं येन

द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ ओं स नो बन्धु र्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन् नध्यैरयन्त ॥७॥ ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

अथ हवनमन्त्राः

निम्नलिखित मन्त्रों से एक २ आचमन करें।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा। ओं सत्यं यशः श्री मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।

इन मन्त्रों से अङ्ग स्पर्श करें।

ओं वाङ् मऽआस्ये ऽस्तु—मुख

ओं नसो र्मे प्राणोऽस्तु—नासिका के दोनों छिद्र

ओं अक्ष्णो र्मे चक्षुरस्तु—दोनों आंखें

आ कर्णयो र्मे श्रोत्रमस्तु—दोनों कांन

ओं बाह्वो र्मे बलमस्तु—दोनों बाहु

ओं ऊर्वो में ओजो ऽस्तु—दोनों जंघा, और

ओं अरिष्टानि मे ऽङ्गानि तनूस्तन्वा में सह सन्तु—इसमे दाहिने हाथ से जल स्पर्श कर मार्जन करना चाहिये ।

ओं भूर्भुवः स्व मन्त्र को पढ़कर ब्राह्मणादि के घर से अग्नि लाकर वा. कर्पूर जला कर अग्न्याधान करे ।

अग्न्याधानमंत्रः

ओं भू र्भुव स्व र्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्टे ऽग्नि मन्नाद मन्नाद्यायादधे ॥१॥

अग्नि प्रदीप्त करने का मन्त्रः

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वामिष्टापूर्ते सᳫं सृजेथामयं च । अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥२॥

निम्न लिखित मन्त्रों से एक २ समिधा घृत में भिगो कर अग्नि में डाले। समिधा आठ २ अंगुल लकड़ी की होनी चाहिये।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते नेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभि र्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समधेय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥१॥

एक समिधा ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतै र्बोधयतातिथिम् ।

आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे–इदन्न मम ॥२॥ ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे— इदन्न मम ॥३॥

इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नये ऽङ्गिरसे-इदन्न मम।

इससे तीसरी समिधा।

ओं अयन्त इध्म० इस मन्त्र से ५ घृत की आहुतियां देवें

जलप्रसेचनमन्त्राः

इन मन्त्रों से दाहिनी अञ्जली जल में लेकर वेदि के चारों ओर छिड़के।

ओं अदिते अनुमन्यस्व (पूर्व) ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व (पश्चिम) ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व (उत्तर) ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पति र्वाचं नः स्वदतु ॥४॥ (चारो ओर)

आघारावाज्याहुति और आज्यभागाहुति

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदन्न मम।

वेदि के उत्तर भाग अग्नि में डाले

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम।

वेदि के दक्षिण भाग में डालें

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये–इदन्न मम ॥१॥
ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥२॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदि के मध्य में दो आहुतियां देवे ।

व्याहृति आहुति के मन्त्र

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥ ओं भुव र्वायवे स्वाहा । इदं वायवे इदन्न मम ॥२॥ ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय इदन्न मम ॥३॥ ओं भूर्भुव स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्य इदन्न मम ॥४॥

स्विष्टकृदाहुति का मन्त्र—यह घृत अथवा भात की देनी चाहिये ।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्ट त्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ॥१॥

प्रजापत्याहुतिमन्त्रः

मन में बोलकर आहुति देवें ।

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम ।

प्रधान होम सम्बन्धी आज्याहुति मन्त्राः

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आसुवो र्जेमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥१॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्नि ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥२॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥३॥ ओं प्रजापते नत्व-देतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्न मम ।

अष्टआज्याहुतिमन्त्राः

ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवया-सिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥ ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥ ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामव-

स्युराचके स्वाहा । इदं वरुणाय इदन्न मम ॥३॥ ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह वोध्युरुशसं मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा। इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥४॥ ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्त, मरुतः स्वर्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम ॥५॥ ओं अयाश्चाग्ने ऽस्यनभिशस्ति पाश्च सत्यमित्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजं ᳪ स्वाहा । इदमग्नये अयसे इदन्न मम ॥६॥ ओं उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणायऽऽदित्यायाऽदितये च—इदन्न मम ॥७॥ ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञ ᳪ हि ᳪ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥

दैनिक अग्निहोत्र

प्रातःकाल के मन्त्र

सूर्यो ज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥ सूर्यो वर्चो

ज्योति र्वर्चः स्वाहा ॥२॥ ज्योतिः सूर्यः सूर्या ज्योतिः स्वाहा ॥३॥ ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

सायंकाल के मन्त्र

ओं अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥ ओं अग्नि र्वर्चो ज्योति र्वर्चः स्वाहाः ॥२॥ ओं अग्नि ज्योंति ज्योंति-रग्निः स्वाहा ॥३॥

इस तीसरे मन्त्र को मन से उच्चारण कर आहुति देवे।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

प्रातः सायं के मन्त्र

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ॥१॥ ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपा-नाय इदन्न मम ॥२॥ स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ॥३॥ ओं भूर्भुवः स्व रग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य व्यानेभ्य इदन्न मम ॥४॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥ ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्ची पासेत तया मा मद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥

ओं विश्वानि देव० और अग्ने नय सुपथा० इन दोनों मन्त्रों से एक २ आहुति देवे।

पूर्णाहुति मन्त्र

ओं सर्वं वै पूर्णं ॐ स्वाहा ॥१॥

इस मन्त्र से तीन आहुतियां देवे ।

शान्तिपाठ

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॐ शान्तिः पृथिवी शान्ति-रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्ति र्विश्वे देवाः शान्ति र्ब्रह्म शान्तिः सर्वं ॐ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिः रेधि ॥१॥

"ओं शान्तिःशान्तिःशान्तिः" यह उच्चारण कर यज्ञ समाप्त करना चाहिये ।

हमारी धर्मपुस्तक

१—ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद हैं। संसार के आदि में परमपिता परमात्मा ने मनुष्यों के कल्याण और ज्ञान देने के लिये अग्नि वायु आदित्य तथा अङ्गिरा इन चार ऋषियों के हृदय में चारों वेदों का क्रमशः ज्ञान दिया। वेद में असत्य असम्भव और पुनरुक्ति आदि दोष नहीं हैं। पुराण कुरान बाईबिल आदि पुस्तकें मनुष्य कृत हैं। इनमें अधिकतर बातें भ्रममूलक हैं। अतः ये पुस्तकें वेद के समान मानने योग्य नहीं हैं।

२—वेद का ज्ञान ईश्वर ने दिया है। पुस्तकें मनुष्यों ने लिखी हैं। वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद में हमें परमात्मा ने धर्म का उपदेश दिया। वेद का प्रत्येक उपदेश हमें मानना चाहिये। प्रत्येक कल्प के आरम्भ में परमात्मा वेदों का ज्ञान देता है, क्योंकि वह अपनी प्रजा का सदा ही भला चाहता है। वेद पढ़ने का सबको अधिकार है।

३—मनुस्मृति आदि शास्त्रों की सारी बातें माननी चाहिये, परन्तु यदि कोई बात वेद विरुद्ध हो तो वह नहीं माननी चाहिये। वेद स्वतः प्रमाण हैं। अन्य ग्रन्थ परतः

प्रमाण हैं। वेद सबसे प्राचीन उत्तम और माननीय पुस्तक है। अग्नि आदि ऋषियों ने दूसरे मनुष्यों को वेदों का उपदेश किया, उन्होंने दूसरों को इस प्रकार गुरु शिष्य परम्परा से संसार में वेदों का प्रचार हुआ है।

४—लोग पुराण आदि को धर्म पुस्तक मानने लगे थे। वेदों का नाम भी नहीं जानते थे। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने वेदों का सच्चा ज्ञान कराया। वेदों का पढ़ना पढाना और सुनना सुनाना आर्य्यों का परम धर्म है। वेदों के प्रचारार्थ आर्य्य समाज की स्थापना की। वेदों का सरल हिन्दी में अत्युत्तम भाष्य किया। वेद सम्बन्धी आक्षेपों के निवारण के लिये "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" आदि उत्तम २ पुस्तकें लिखीं। आर्य्य समाज के परिश्रम से साधारण जनता भी वेदों के सदुपदेशों से लाभ प्राप्त कररही है।

महर्षि दयानन्द।

भारत के पश्चिम भाग में गुजरात काठियावाड़ एक प्रान्त है।

ग्राम—टंकारा (मोरवी राज्य)

पिता का नाम—श्री पं० कृष्ण जी राज्य में आपका बहुत मान और प्रतिष्ठा थी।

माता का नाम—श्रीमती कौशल्या देवी

वर्ण—औदीच्य ब्राह्मण

कार्य—तहसीलदारी

उपासक—शिवजी के

मत—शैव

जन्म सम्वत्—१८८१ विक्रमी

नाम–मूलशङ्कर, मूल की बुद्धि बचपन से ही तीव्र थी।

अक्षराभ्यास–पांचवें वर्ष में, आर्यभाषा का कराया गया।

शिक्षा–कुलधर्म और रीति के अनुसार पूजा पाठ सिखाया गया।

कण्ठस्थः––मन्त्र और श्लोकादि कराये।

अष्टम वर्ष––में यज्ञोपवीत हुआ और सन्ध्या की विधि बतलायी गयी।

शिवरात्रि का व्रत

मूल ने चौदह वर्ष की आयु में सम्पूर्ण यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लिया था। इस बार पिता जी ने मूल को व्रत रखने की आज्ञा दी और कहा कि उपवास रखो, रात को जागकर

महादेव की पूजा करो। माता ने मना किया कि बालक छोटा है भूखा न रह सकेगा।

पिता जी ने शिवपुराण की कथा सुनाई। व्रत के ये लाभ बताये। शिव जी दुष्टों का नाश करता है। भक्तों की इच्छा पूर्ण होती है। लोक परलोक में सुख प्राप्त होता है। सायंकाल को मूल पिता जी के साथ मन्दिर में गया। पूजा प्रारम्भ करदी। सब लोग सो गये, पर मूल जागता ही रहा कि कहीं सो जाने से व्रत निष्फल न हो जाये।

विचित्रघटना

एक चूहा बिल से निकल कर शिव की मूर्ति पर कूदने लगा। मिष्टान्न को खाने लगा और पुष्पादि को भ्रष्ट करने लगा। यह देख मूल के मन में सन्देह हुआ कि यह तो क्षुद्र चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता है? भक्तों की क्या सहायता करेगा। इसका त्रिशूल कहां है। इसकी पूजा करने से क्या लाभ है? क्या यही कैलाश-वासी शिव है।

पिता जी को जगाकर सब वृत्तान्त निवेदन किया। उन्होंने कहा बेटा? व्यर्थ शंका मत करो। कलियुग में शिवजी के साक्षात् दर्शन नहीं होते हैं। अतः मूर्ति

बनाकर पूजते हैं। इसी से शम्भु प्रसन्न होकर भक्तों की कामना पूर्ण करता है। परन्तु मूल को इन बातों से सन्तोष न हुआ। मन में प्रतिज्ञा की कि सच्चे शिव को प्राप्त कर उसी की उपासना करूंगा। घर आकर भोजन कर लिया, और सो गये।

इसी घटना को "ऋषि बोध उत्सव" कहते हैं। क्योंकि इसी दिन बालक मूलशङ्कर को सच्चे शिव जी का ज्ञान हुआ था। आर्यजनता आर्यसमाज मन्दिरों में विशेष उत्सव मनाती है।

गृहत्याग

दो वर्ष के पश्चात् मूल की छोटी बहिन की हैज़े से मृत्यु हो गयी। परिवार में हाहाकार मच गया। सारे लोग रो रहे थे, परन्तु मूल की आंखों से एक भी अश्रु न गिरा। मृत्यु का दृश्य देख मूल का मन अशान्त हो गया। तीन वर्ष न बीते थे कि अतिस्नेही चचा का स्वर्ग-वास होगया, मूल फूट २ कर रोने लगा। मन में विचारा कि सभी जीव इसी प्रकार मरते हैं। एक दिन मैं भी मृत्यु का ग्रास बनूंगा। मृत्यु के महारोग की महौषधि ढूंढनी चाहिये।

पिता जी ने विवाह के बन्धन में फंसाना चाहा। घर से भाग कर इससे भी छुटकारा पाया। योगाभ्यास से मुक्ति प्राप्त होती है। अतः योगियों की खोज करते हुए सिद्धपुर के मेले में पहुंचे। पिता जी को पता चला। वे वहीं पहुंचे। मूल को पकड़ लिया। सिपाहियों को आज्ञा दी कि इस निर्मोही पर दिन रात पहरा रखो। मूल अवसर पाकर वहां से भाग गया।

मूलशंकर ने अनेक स्थानों में जाकर योगियों से योगविद्या सीखी। व्याकरण के अनेक ग्रन्थ पढ़े। चौबीसें वर्ष की आयु में मूल ने श्री १०८ स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती से संन्यास ग्रहण किया। उन्होंने अपने शिष्य का नाम दयानन्द सरस्वती रखा।

विद्यार्थीजीवन।

श्री स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य और तपस्या से शरार का अति बलवान् बना लिया था। परन्तु अभी मन को शान्ति न हुई। सच्चे महादेव को नहीं पाया था। अतः पूर्ण-विद्वान् बनने की इच्छा से मथुरा में प्रज्ञाचक्षु परमहंस श्री स्वामी विरजानन्द जी की सेवा में पहुंचे। आप के पिता कर्तारपुर (जि० जालन्धर) निवासी श्री पं० नारायण-दत्त जी थ। विरजानन्द जी व्याकरणादि शास्त्रों के

प्रकाण्ड पण्डित थे। वेदादि सत्‌शास्त्रों पर परम श्रद्धा रखते थे। गायत्री मन्त्र का नियमपूर्वक जप करने से आपकी बुद्धि और प्रतिभा बहुत बढ़ गई थी। आपका देहान्त ९१ वर्ष की आयु में हुआ था।

स्वामी जी ने दयानन्द से व्याकरण के कतिपय प्रश्न पूछे। ठीक उत्तर मिलने पर कहा कि मैं तुम्हें आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ाऊंगा' क्योंकि ऋषि शैली अत्युत्तम है। जो कुछ पढ़ा है उसे भुला दो। पुस्तकों को यमुना में बहा दो। स्वामी जी ने सहर्ष इस आज्ञा का पालन किया। गुरु जी की कुटिया में झाडू लगाते। यमुना से जल लाकर गुरु जी को स्नान कराते। आपका विद्यार्थीजीवन तपस्या का था। ढाई वर्ष में ही व्याकरण के अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि ग्रन्थ पढ़ लिये। वेदादि आर्षशास्त्रों का पाठ किया और विद्याध्ययन समाप्त किया।

गुरुदक्षिणा

स्वामी जी गुरु जी की सेवा में कुछ लौंग भेंट लेकर उपस्थित हुए। सादर प्रणाम कर निवेदन किया कि आप ने मुझे विद्यामृत पान करा अनुगृहीत किया है। एतदर्थ मैं आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूं। श्री विरजानन्द

जी ने प्रिय शिष्य के श्रद्धा और भक्तिपूर्ण वचन सुनकर कहा कि मैं तुमसे अतिप्रसन्न हूं। परन्तु मैं कुछ और ही गुरुदक्षिणा चाहता हूं।

दयानन्द! भारत में अज्ञान और अन्धकार फैला हुआ है। लोग वेदों को भूल गये हैं। मत मतान्तरों के कारण कुरीतियां प्रचलित हो रही हैं। दीन हीन जन दुःख पा रहे हैं। जाओ आर्यसन्तान की बिगड़ी दशा को सुधारो। वेद का पवित्र सन्देश सब को सुनाओ। पाखण्ड खण्डन कर वैदिकधर्म का प्रचार करो। यही मेरी आन्तरिक इच्छा है। दयानन्द! ईश्वर तुम्हें सफलता प्रदान करे। स्वामी जी ने गुरु जी की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया। और प्रणाम कर वहां से विदा हुए।

प्रचारकार्य

स्वामी जी चार वर्ष तक आगरा ग्वालियर पुष्कर आदि स्थानों में प्रचार करते रहे। पुराणों का खूब खण्डन किया, लोगों को वेद पढ़ने की ओर प्रेरित किया।

संवत् १९२३ विक्रमी में अजमेर में पादरियों से शास्त्रार्थ किया। पादरी निरुत्तर हो गये। स्वामी जी के आक्षेपों से चिढ़ कर कहा कि ऐसी बातों से आप कभी क़ैद हो

जायंगे। आपने मुस्कराते हुए उत्तर दिया "सत्य के लिये क़ैद होना कोई लज्जा की बात नहीं"। कर्नल ब्रूक से गौ रक्षा पर वर्तालाप किया।

कुम्भ का मेला

सं० ११२४ विक्रमी में हरिद्वार के कुम्भ पर "पाखण्ड खण्डिनी पताका" गाड़कर मूर्तिपूजा आदि मिथ्या विचारों और मतमतान्तरों का खण्डन किया। जनता को उपदेश दिया कि गङ्गा में डुबकी लगाने से मुक्ति नहीं होती है। अच्छे कर्म करो। वेद की शिक्षा पर चलो। इसी से कल्याण होगा। महाराज कुम्भ पर भारत की अधोगति का दृश्य देख अतिदुःखित हुए। लंगोट के सिवाय सब कुछ त्याग दिया और गंगा तट पर प्रचार करने लगे।

काशीशास्त्रार्थ

स्वामी जी ने पण्डितों से अनेक शास्त्रार्थ किये। परन्तु अन्त को सभी परास्त हो गये। सं० १९२६ में काशीनरेश के सभापतित्व में काशी के पण्डितों से मूर्ति-पूजा, मृतकश्राद्ध, अवतार, पुराण आदि विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ। यहां के पण्डित भी मूर्तिपूजा को वेदानु-

कूल सिद्ध न कर सके। इस विजय से स्वामी जी की विद्वत्ता भारत के कोने २ में प्रसिद्ध हो गयी।

आर्य्यसमाज की स्थापना।

प्रयाग कलकत्ता कानपुर फरुखाबाद मेरठ आदि स्थानों पर वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए महाराज बम्बई में पधारे। यहां नारायणस्वामीमत, रामानुजमत, ब्राह्मसमाज आदि मतों की खूब समालोचना की। प्रसिद्ध पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। पहली आर्यसमाज की स्थापना की। नियम निर्धारित हुए।

पूना में १५ व्याख्यान दिये। चालीस पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। दिल्लीदर्बार के अवसर पर वैदिकधर्म का प्रचार किया। चांदापुर में ईसाई और मुसलमानों के प्रतिनिधियों से शास्त्रार्थ किया। स्वामी जी ने अकाट्य युक्तियों से वैदिकधर्म की महत्ता सिद्ध की।

स्वामी जी मूर्तिपूजा, वाममार्ग वैष्णवमत, अवतार मृतकश्राद्ध, कण्ठी तिलक छाप माला पुराण उपपुराण गङ्गास्नान से मुक्ति समझना आदि वेदविरुद्ध विचारों का खूब खण्डन किया करते थे।

पंजाब में प्रचार

लखनऊ मुरादाबाद सहारनपुर लुधियाना आदि

नगरों में प्रचार कर स्वामी जी लाहौर पधारे। यहां पर आपके उपदेश और व्याख्यानों से धूम मचगयी। लाहौर आर्यसमाज की स्थापना की गयी। बम्बई में बने आर्य समाज के नियमों का संशोधन कर १० नियम निश्चित किये। आर्यभाषा का सीखना प्रत्येक आर्यसभासद् के लिये अनिवार्य बतलाया। आर्यसमाज से पूर्व पंजाब में हिन्दीभाषा का प्रचार बहुत कम था। आज स्थान २ पर आर्यस्कूलों के खुलने से आर्य्यभाषा के प्रचार में बहुत सहायता मिली है। डी. ए. वी. कालिज लाहौर की स्थापना ता० १ जून सन् १८८६ ई० में हुई। ऋषि दयानन्द राष्ट्रभाषा के प्रबल पोषक थे। आर्यभाषा को ही राष्ट्रभाषा होने योग्य मानते थे। स्वामी जी ने अपनी सब पुस्तकें भाषा में ही लिखी हैं।

अमृतसर, जालन्धर, मुलतान आदि पंजाब के प्रसिद्ध नगरों मे प्रचार किया। आर्यसमाजें स्थापित की और शास्त्रार्थ किये।

राजपूताना में प्रचार

पंजाब से लौट कर स्वामी जी संयुक्तप्रान्त के प्रसिद्ध नगरों में धूमधाम से प्रचार करते रहे। सं० १९३४

विक्रमी में राजपूताने का दौरा किया। अजमेर जयपुर और भरतपुर में प्रचार कर उदयपुर पधारे। स्वर्गीय महाराणा सज्जनसिंह जी को धर्म और नीति के ग्रन्थ पढ़ाते रहे। जनता को उपदेश देते रहे। परोपकारिणी सभा की स्थापना की। अपनी सब सम्पत्ति सभा को सौंप दी। यहां से शाहपुरा पधारे। शाहपुरानरेश श्री नाहरसिंह जी को आर्य्यधर्म का उपदेश दिया। आपको एक खद्दर का अङ्गरखा भी बनवाकर दिया था। जोधपुर जाते समय आर्य लोगों ने कहा कि जोधपुर के लोग कठोर प्रकृति के हैं। कहीं सत्योपदेश से चिढ़कर आपको पीड़ा न पहुंचावें। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "चाहे लोग मेरी अंगुलियों की बत्तियां बनाकर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं"। मैं तो वहां जाकर अवश्य सत्योपदेश करूंगा।

मृत्युः

श्री स्वामी जी ने जोधपुर में चार मास तक प्रचार किया। जोधपुर नरेश के महल में एक वेश्या रहती थी। स्वामी जी के उपदेशों से महाराज का मन वेश्या से हट गया। इस से चिढ़ कर वेश्या ने जगन्नाथ रसोइये को

बहकाया। जगन्नाथ ने स्वामी जी को दुग्ध मे विष मिला कर दे दिया। स्वामी जी ने जगन्नाथ को बुला कर कहा कि तुमने मेरे कार्य को बहुत धक्का पहुंचाया है। मैं तुम्हें हानि पहुंचाना नहीं चाहता। पास से १५ रु० देकर क्षमा कर दिया, और कहा कि शीघ्र नैपाल भाग जाओ।

स्वामी जी को इलाज के लिये आबू लाया गया। पर कुछ लाभ न हुआ। शरीर दिन प्रतिदिन दुर्बल होता गया। अन्त को अजमेर में कार्तिक कृष्णा अमावस्या सं० १९४० तदनुसार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ईस्वी को दीपमालिका के दिन "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" कहते हुए परम पिता की गोद में लीन हो गये।

महर्षि के जीवन से शिक्षाएं

श्री स्वामी दयानन्द जी का जीवन आदर्श था। जिससे अनेक उत्तम शिक्षाएं प्राप्त होती हैं। जिनके आचरण से हमारा जीवन महान् बन सकता है।

(१) ईश्वरविश्वास—स्वामी जी ईश्वर के पूर्ण भक्त थे। एक दिन उदयपुरनरेश ने कहा कि यदि आप मूर्ति-पूजा का खण्डन करना छोड़ दें, तो मन्दिर की सम्पूर्ण

सम्पत्ति और गद्दी के महन्त हो जायेंगे। आप राज्यगुरु बन कर प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे।

स्वामी जी ने झुंझला कर उत्तर दिया कि "मैं लोभ में आकर ईश्वर की आज्ञा भङ्ग नहीं करूंगा। छोटे से राज्य और मन्दिर से तो मैं एक दौड़ लगाकर बाहिर जा सकता हूं। परन्तु परमेश्वर के महान् राज्य से निकल कर कहीं नहीं जा सकता। ईश्वर के आतिरिक्त मैं किसी और पदार्थ की पूजा नहीं करूंगा।

(२) सत्यभाषण—बरेली में स्वामी जी ने ईसाई मत की तीव्र आलोचना की। भक्तों ने आप से निवेदन किया कि महाराज! तीव्र खण्डन न कीजिये। इससे राजकर्मचारी असन्तुष्ट होते हैं। दूसरे दिन व्याख्यान में नगर के प्रतिष्ठित पुरुष और राजकर्मचारी भी उपस्थित थे। महर्षि ने कड़क कर कहा लोग कहते हैं कि "असत्य का खण्डन न कीजिये, इससे कमिश्नर अप्रसन्न होगा, कलेक्टर नाराज़ होगा, परन्तु चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जाये मैं तो सत्य ही कहूंगा।"

(३) दयालुता—स्वामी जी दया के सागर थे। धर्मप्रचार से चिढ़कर लोग आप पर ईंट पत्थर आदि फेंकते थे। परन्तु आप उन्हें पुष्पवर्षा कहा करते थे।

अनूपशहर में एक ब्राह्मण ने आपको पान में विष मिलाकर दे दिया। रस चूसते ही विष का पता लग गया। किन्तु आप ने उसे कुछ नहीं कहा। गङ्गा पर जाकर योग की वस्ती और न्योली क्रिया द्वारा ज़हर को बाहिर निकाल दिया। यह सब भेद स्वामी जी के भक्त सय्यद मुहम्मद तहसीलदार को ज्ञात हो गया। उसने ब्राह्मण को क़ैद कर दिया। मन में विचारा कि आज महाराज मुझ पर अति प्रसन्न होंगे, क्योंकि मैंने उनके विषदाता को पकड़ा है। परन्तु आप तहसीलदार के आने पर बोले भी नहीं। अप्रसन्नता का कारण पूछने पर स्वामी जी ने कहा कि मैंने सुना है कि आज तुमने मेरे लिये एक मनुष्य को क़ैद किया है। मैं मनुष्यों को बन्धन में डालने नहीं आया किन्तु क़ैद से छुड़ाने आया हूं। यह सुन तहसीलदार हैरान हुआ और ब्राह्मण को जाकर छोड़ दिया।

(४) निर्भयता—कर्णवास में गङ्गास्नान के अवसर पर स्वामी जी ने मूर्तिपूजा तिलक कण्ठी छाप आदि असत्य विचारों का तीव्र खण्डन किया। इससे चिढ़ कर राव कर्णसिंह ने आप पर तलवार का वार किया। स्वामी जी ने झपट कर तलवार छीन ली, और भूमि पर टेक कर उसके दो टुकड़े कर दिये फिर राव महाशय से कहा

कि यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो अपने गुरु जी को बुला लाओ, हम तय्यार हैं। शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर जोधपुर से जाकर भिड़ो। संन्यासियों से क्यों टकराते हो।

(५) ब्रह्मचर्य्य—रावलपिण्डी में सरदार विक्रमसिंह जी ने कहा सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य्य के पालन से मनुष्य महाबली हो जाता है, क्या यह सत्य है? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि ब्रह्मचर्य्य की जो महिमा शास्त्रों में वर्णित है वह सर्वथा सत्य है। तब सरदार साहिब ने कहा कि आप भी ब्रह्मचारी हैं। परन्तु आप में तो हमें विशेष बल मालूम नहीं होता। स्वामी जी ने उस समय कुछ उत्तर न दिया, किन्तु सरदार साहिब के जाते समय गाड़ी को पीछे से पकड़ लिया। बहुत यत्न करने पर भी घोड़े गाड़ी को न खींच सके। सरदार महाशय ने पीछे की ओर देखा तो स्वामी जी ने गाड़ी को छोड़ दिया। सरदार साहिब नीचे उतर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़े और, कहा कि सचमुच आप अतिबलवान् तथा पूर्णब्रह्मचारी हैं।

(६) स्वदेशभक्ति—स्वामी जी सच्चे देशहितैषी थे, एक धर्म, एक सभ्यता, एक भाषा, एक वेष, एकता और मुफ्त शिक्षा को उन्नति का सर्वोत्तम साधन मानते थे।

आपने सत्यार्थप्रकाश आदि पुस्तकों में स्वराज्यप्राप्ति के अत्युत्तम उपाय लिखे हैं। आप लिखते हैं कि चाहे विदेशी राज्य कितना ही अच्छा होवे, परन्तु वह स्वदेशी राज्य से कदापि उत्तम नहीं हो सकता है। भारतीय रीति नीति और पद्धति से ही देश स्वाधीन तथा उन्नत हो सकता है। आर्यावर्त को धर्म और सभ्यता का जन्मदाता मानते थे। आप स्वदेशी वस्त्रों और वस्तुओं को ही उत्तम समझते थे।

एक दिन ठाकुर ऊधोसिंह अपने पिता ठा० भूपालसिंह जी के साथ स्वामी जी के दर्शन करने के लिये फरुखाबाद पधारे। ऊधोसिंह के सब वस्त्र विदेशी और नये फ़ैशन के बने हुए थे। स्वामी जी ने अति प्रेम से कहा "ऊधो देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे सादे और स्वदेशी वस्त्र धारण किये हुए हैं। बिरादरी में भी उनका अति सम्मान है। विदेशी वस्त्र धारण करने से तुम्हारा अपने पिता जी की अपेक्षा अधिक आदर नहीं हो सकता है। स्वदेशी वस्त्र धारण करना ही उत्तम है। आपके उपदेश का ऊधोसिंह पर अति प्रभाव

पड़ा। उसने घर जाकर विदेशी वस्त्र उतार दिये, और स्वदेशी वस्त्र पहिन लिये।

इसी प्रकार विद्या, धर्म प्रेम, साहस, सदाचार, दृढता, और गुरुभक्ति आदि शिक्षाएं प्राप्त होती हैं।

महर्षि के महान् उपकार

आदित्यब्रह्मचारी, विश्वहितकारी परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ महर्षि दयानन्द जी महाराज ने आर्यजाति पर निम्नलिखित विशेष उपकार किये हैं।

(१) एक ईश्वर की पूजा—आर्यसमाज से पूर्व देश में देवी देवताओं की पूजा होती थी। लोग ईश्वर को भूल चुके थे। स्वामी जी ने बताया कि ईश्वर सृष्टिकर्ता धर्त्ता और संहर्ता है। वही पूजनीय और उपास्यदेव है। उसकी कोई मूर्ति नहीं होती है, वह सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। मूर्तिपूजा से ईश्वर प्राप्त नहीं होता है। परमात्मा श्री राम और श्री कृष्ण आदि का अवतार (शरीर) धारण नहीं करता है। क्योंकि वह निराकार निर्विकार और सर्वशक्तिमान् है।

(२) वैदिकधर्म प्रचार—मत मतान्तरों के कारण

देश में अशान्ति फैली हुई थी। आर्य्यधर्म आयु, विचार, और आदर्श की दृष्टि से सब से उत्तम, है। इस के सिद्धान्त वेदानुकूल हैं। इसका उद्देश्य संसार का कल्याण करना है। इसके नियम प्रत्येक देश और जाति के लिये लाभप्रद हैं। यही सार्वभौम धर्म होने योग्य है। इसी धर्म के पालन करने से संसार में सुख और शान्ति फैल सकती है।

(३) **ब्रह्मचर्य्य**—बाल विवाह के कारण भारत सन्तान निर्बल निस्तेज और अल्पायु हो रही थी। लड़कों का २५ और लड़कियों का १६ वर्ष से पूर्व विवाह नहीं करना चाहिये। जिससे कि शरीर का प्रत्येक अङ्ग हृष्ट पुष्ट और पूर्ण हो सके। ब्रह्मचर्य के पालन करने से मनुष्य विद्वान् बलवान् और दीर्घायु होता है। लड़कों के समान कन्याओं को भी ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये।

(४) **वैदिक वर्णव्यवस्था**—ब्राह्मणादि वर्ण गुण कर्म स्वभाव के अनुसार मानने चाहिये। प्राचीन काल में मनुष्य उत्तम कर्मों से ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण, और नीच कर्मों से शूद्रादि नीच वर्णों को प्राप्त होते थे। जैसे महर्षि विश्वामित्र जी क्षत्रिय से ब्राह्मण और मातङ्ग ऋषि चाण्डाल से ब्राह्मण हो गये थे। जात पांत के निर्मूल

विचारों और विरादरी के बन्धन ने आर्यजाति के सङ्गठन को नष्ट कर दिया है। जन्म से मनुष्य मात्र समान है।

(५) शुद्धि—कोई हिन्दु ईसाई मुसलमानादि होने पर हिन्दु धर्म में पुनः प्रविष्ट नहीं हो सकता था। जन्म के मुसलमानादि और हिन्दु धर्म से पतित मनुष्यों को शास्त्र रीति से शुद्ध कर आर्यधर्म में प्रविष्ट कर लेना चाहिये। शुद्ध व्यक्ति के साथ आर्यों के समान खान पान आदि व्यवहार करने चाहिये। शुद्धि आर्यजाति के लिये सञ्जीवनी बूटी है। शुद्धि के न होने से हिन्दुओं की संख्या प्रतिदिन घटती जाती थी। स्वामी जी ने जन्म के एक मुसलमान को शुद्ध कर अलखधारी नाम रखा था। आर्यसमाज के यत्न से लाखों मनुष्य हिन्दुओं में सम्मिलित हो गये हैं।

(६) अछूतोद्धार—शिखासूत्रधारी होने पर भी सात करोड़ मनुष्य आर्यजाति में अछूत समझे जाते हैं। जिन्हें हिन्दू नीच तथा अस्पृश्य मानते हैं। स्वामी जी छुआछूत का घोर विरोध किया करते थे। इनके साथ हमें प्रेम का वर्ताव करना चाहिये। ये भी जाति के आवश्यक अङ्ग हैं। इन्हें भी हिन्दुओं के समान अधिकार होने

चाहिये। आर्यसमाज ने इन्हें शिक्षित और सभ्य बनाने का बहुत यत्न किया है।

ऋषि दयानन्द जी की कृत पुस्तकें

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ऋग्वेद भाष्य, यजुर्वेद भाष्य, सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि, पञ्चमहायज्ञ विधि, आर्याभिविनय, आर्योद्देशरत्नमाला, गोकरुणानिधि, व्यवहार भानु आदि आर्यसिद्धान्त पोषक पुस्तकें रची हैं। इनका स्वाध्याय करने से वैदिकधर्म का वास्तविक ज्ञान तथा मिथ्या मत-मतान्तरों की पोल का पूर्ण ज्ञान होता है।

आर्यसमाज का कार्य

देश और जाति की उन्नति तथा वैदिक धर्म के पुनरुद्धारार्थ श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज ने चैत्र सुदि ५ सं० १९३२ विक्रमी तदनुसार ता० १० एप्रिल सन् १८७५ ई० शनिवार को बम्बई नगर में आर्यसमाज की स्थापना की थी।

आर्यसमाज ने मूर्तिपूजा मृतकश्राद्ध बालविवाह छुआ छूत गङ्गास्नान से मुक्ति समझना आदि असत्य विचारों और कुरीतियों का खण्डन किया है। देश में एक ईश्वर की पूजा, वैदिकधर्मप्रचार, ब्रह्मचर्य, स्त्री शिक्षा अनाथरक्षा, गौरक्षा, विधवा विवाह, शुद्धि, संगठन, स्वदेश-

भक्ति, संस्कृत और हिन्दी भाषा का प्रचार, इत्यादि अत्युत्तम शिक्षाओं का प्रचार किया।

गुरुकुल स्कूल कालिज औषधालय पुस्तकालय अनाथालय कन्या पाठशाला गोशाला विधवाआश्रम दलितोद्धारसभा शुद्धिसभा हिन्दीप्रचारिणीसभा आदि संस्थाए खोलकर भारतवर्ष को महान् लाभ पहुँचाया है। कांगडा के भूकम्प विहार उड़ीसा मध्यप्रदेश गढ़वाल के अकाल और मालावार के मोपला काण्ड से पीड़ित जनों की सहायता कर देश की खूब सेवा की है। प्रत्येक मनुष्य को आर्यसमाज के कार्य में भाग लेना चाहिये। जिससे कि सच्चे धर्म का प्रचार हो सके।

आर्य्यसमाज के सिद्धान्त

वेद की प्रत्येक बात आर्यसमाज का सिद्धान्त है। परन्तु यहाँ पर केवल बालकोपयोगी विषयों का ही उल्लेख करते हैं, ताकि वे भी आर्यसमाज के सिद्धान्तों को ज्ञात कर लाभ उठा सकें।

१ अनादिपदार्थ—ईश्वर, जीव, और प्रकृति तीन हैं।

२ ईश्वर—जिसके गुण कर्म स्वभाव और स्वरुप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है, जो अद्वितीय सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वव्यापक अनादि और अनन्त

आदि सत्य गुणों वाला है, जिस का स्वभाव अविनाशी ज्ञानी आनन्दी शुद्ध न्यायकारी दयालु और अजन्मादि है, जिस का कर्म जगत् की उत्पत्ति पालन और विनाश करना तथा सर्व जीवों के पाप पुण्य का फल ठीक २ देना है, उस को ईश्वर कहते हैं।

३ वेद—जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् यजुः साम और अथर्व ये चार पुस्तक हैं। जिन से मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उनको वेद कहते हैं।

४ धर्म—जिस का स्वरुप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपात रहित न्याय सर्वहित करना है, जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये मानने योग्य है, उस को धर्म कहते हैं।

५ मुक्ति—तीनों प्रकार के दुःखों से छूट कर बन्धन रहित होना कहाती है। दुःखों में ग्रस्त होना "बन्धन" है। मुक्ति (मोक्ष) के साधन ईश्वरोपासना योगाभ्यास, धर्माचरण विद्याप्राप्ति ब्रह्मचर्यसेवन और सत्संग आदि हैं, गङ्गास्नानादि नहीं।

६ आवागमन—कर्मफलानुसार जीव के एक शरीर

को छोड़ कर दूसरे में जन्म लेना आवागमन है। पूर्वजन्म और पुनर्जन्म दोनों ही मानने चाहिये।

७ कर्मव्यवस्था—कर्मों का फल अवश्य मिलता है। शुभ और अशुभ कर्मों से क्रमशः सुख और दुःख मिलते है।

८ वर्णव्यवस्था—गुण कर्म स्वभावानुसार होती है, जन्म से नहीं।

९ आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार हैं।

१० संस्कार—उस को कहते जिस से शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें। संस्कार १६ हैं। द्विजों को यज्ञोपवीत और आर्यमात्र को शिखा धारण करनी चाहिये। यज्ञोपवीत आर्यों का धार्मिक और कर्तव्यचिन्ह है, इस के धारण न करने पर मनुष्य वैदिक कर्म करने का अधिकारी नहीं होता है। मृतक श्राद्ध नहीं करना चाहिये।

११ यज्ञ—ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ पितृयज्ञ भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ ये पांच महायज्ञ हैं। पर्व और विशेष अवसरों पर बृहद् यज्ञ करना चाहिये। स्त्रियों को भी यज्ञ करने का अधिकार है।

१२ शुद्धि अछूतोद्धार में सब को हिस्सा लेना चाहिये।

१३ भोजन—बुद्धिवर्धक और बलकारक खाना चाहिये। मांस मदिरा तम्बाकू सिगरेट आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। इन से बल वीर्य का नाश और बुद्धि भ्रष्ट होती है।

१४—विद्वान् "देव" अविद्वान् "असुर" पापी "राक्षस" और अनाचारी पिशाच होते हैं।

१५ देवपूजा—विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा, धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पुरुष का सत्कार करना देवपूजा कहलाती है। इनके विपरीत पुरुष स्त्री अथवा पाषाणादि जड़ मूर्तियां सर्वथा अपूज्य हैं।

१६ पुराण—ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण इतिहास कल्प गाथा और नाराशंसी कहलाते हैं। भागवत आदि पुराण नहीं है।

१७ तीर्थ—जिससे दुःखसागर से पार उतरें। सत्यभाषण विद्या सत्संग योगाभ्यास और दानादि शुभ कर्म तीर्थ हैं। इतर जलस्थलादि नहीं।

१८ आर्य—जो श्रेष्ठ स्वभाव धार्मिक परोपकारी सत्य विद्यादि गुणयुक्त, अथवा आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वालों को भी आर्य कहते हैं।

१९ उपवेद—जो आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र, जो धनुर्वेद शस्त्रास्त्रविद्या राजधर्म, जो गन्धर्ववेद गानशास्त्र, और अथर्वेद जो शिल्प शास्त्र हैं। ये चार उपवेद हैं।

२० वेदाङ्ग—शिक्षा कल्प निरुक्त व्याकरण छन्द और ज्योतिष आर्ष ग्रन्थ सनातनशास्त्र हैं। इनको वेदाङ्ग कहते हैं।

२१ उपाङ्ग—षड् दर्शन—ऋषि मुनि कृत मीमांसा वैशेषिक न्याय योग सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं।

२२ उपनिषद्—ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरेय छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर ११ प्रामाणिक उपनिषद् हैं।

२३ स्वर्ग नरक—सुख दुःख विशेष को कहते हैं। कोई स्थान विशेष नहीं।

२४ नमस्ते—मैं आपका सम्मान तथा आदर करता हूं।

———

भजन संग्रहः

भजन सं०—१

हे दयामय हे कृपालो सब के दाता आप हैं।
चांद सूरज मेघ के जीवन के दाता आप हैं ॥१॥
चांद सूरज चलते २ हैं नियम में आप के।
सबसे बढ़ कर सबसे उत्तम सबकी माता आप हैं ॥२॥
दुःखविनाशक दीनबन्धु दुःख हमारे सब हरो।
सबके बन्धु सबके प्रीतम सबके भ्राता आप हैं ॥३॥
सर्व स्वामी सर्व रक्षक ज्ञान के भण्डार तुम।
ज्ञान का प्रकाश दीजो सर्व ज्ञाता आप हैं ॥४॥
है विनय इस दीन की स्वामी जगत् के आप से।
धर्म की नैय्या तरादो सर्वत्राता आप हैं ॥५॥

भजन सं०—२

हम बालकों की ओर भी भगवान् तेरा ध्यान हो।
हो दूर सारी मूर्खता कल्याणकारी ज्ञान हो ॥१॥
हम ब्रह्मचारी, वीर, व्रतधारी, सदाचारी बनें।
हम को हमारे देश भारत पर सदा अभिमान हो ॥२॥
होकर बड़े कुछ कर दिखाने के लिये तय्यार हों।
दिल में हमारे देश सेवा का भरा अरमान हो ॥३॥
हो नौजवानों की कभी जब मांग प्यारे देश को।

मातृवेदि पर प्रथम रक्खा हमारा प्राण हो ॥४॥
संसार का सिरमौर होकर देश हमसे कह सके।
हे वीर बालक! धन्य तुम मेरी असल सन्तान हो ॥५॥

भजन सं०—३

हे प्रभो! हम बालकों की प्रार्थना सुन लीजिये।
कर कृपा अब शीघ्र हमको शुद्धि बुद्धि दीजिये ॥१॥
मात, पितु गुरुभक्त हों हम नित सदाचारी बनें।
विज्ञ हों गुणवान् हों सद्ज्ञान ऐसा दीजिये ॥२॥
सर कटायें मोद से पर धर्म दें नहीं हाथ से।
ध्रुव हक़ीकत बन सकें वह आत्मशक्ति दीजिये ॥३॥
फिर स्वदेशी वेष भाषा सभ्यता से प्रेम हो।
लेकर विदेशी व्यर्थ फैशन सादगी दे दीजिये ॥४॥
बंध जायें सारे हिन्दवासी एकता के सूत्र में।
उत्पन्न ऐसे भाव सब के शुचि हृदय में कीजिये ॥५॥
हम हों दुःखी या हों सुखी इसकी हमें चिन्ता नहीं।
पर त्राण भारत जननि का दुःखों से भगवन् कीजिये॥६॥

भजन सं०—४

हम दयानन्द के सैनिक हैं दुनियां में धूम मचा देंगे।
यदि पर्वत आये रस्ते में ठोकर से उसे गिरा देंगे ॥१॥
हम आफ़त और मुसीबत को हंस २ कर सर पर झेलेंगे।

हम लाज धर्म की रक्खेंगे और अपना आप मिटा देंगे ॥२॥
हम पुत्र हैं भारत माता के माता पै संकट आया है।
हम उस के बन्धन काटेंगे और अपना शीस कटा देंगे ॥३॥
दुनियां में अन्धेरा फैला है पापों ने डेरा डाला है।
प्रकाश वेद के जल्दी से उस को खूब मिटादेंगे ॥४॥
हम कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन के वंशज हैं खूब समझ लेना।
मैदान में गर डट जायेंगे तो नाकों चने चबादेंगे ॥५॥
है श्रद्धानन्द और लेखराम जी लक्ष्य हमारे जीवन के।
हम हंसराज हो जायेंगे बस धर्म पर जानें गंवादेंगे ॥६॥

भजन सं० ५

हे जन्मभूमि जननी सेवा तेरी करूँगा।
तेरे लिये जिऊँगा तेरे लिये मरूँगा ॥१॥
ब्रह्मचर्य नेम धर कर विद्वान् वीर बन कर।
निज देश वासियों के दुःख दूर मैं करूँगा ॥२॥
हर जगह वो हर समय पर तेरा ही ध्यान होगा।
निज देश वेष भाषा का भक्त मैं बनूँगा ॥३॥
संसार की विपत्ति हंस २ के मैं सहूँगा।
पर देशद्रोही बनकर यह पेट ना भरूँगा ॥४॥
होंगी हराम मुझ को दुनियाँ की सारी खुशियां।
जब तक स्वतन्त्र तुझ को माता न मैं करूँगा ॥५॥
धन माल और सर्वस प्राणों को वार दूँगा।

पर मान तेरा माता जाने नहीं मैं दूंगा ॥६॥
हम हिन्द के हैं बच्चे हिन्दोस्ताँ हमारा।
हे मात! मरते दम तक गाता यही रहूँगा ॥७॥

आरती

जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करे ॥१॥
जो ध्यावे फल पावे दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे कष्ट मिटे तन का ॥२॥
मातु पिता तुम मेरे शरण गहूं किसकी।
तुम बिन और न दूजा आस करूं किसकी ॥३॥
तुम पूरण परमात्म तुम अन्तर्यामी।
परमब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी ॥४॥
तुम करुणा के सागर तुम पालनकर्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी कृपा करो भर्ता ॥५॥
तुम हो एक अगोचर सब के प्राणपति।
किस विधि मिलूं दयामय तुम को मैं कुमति॥६॥
दीनबन्धु दुःखहर्ता तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ द्वार पड़ा तेरे ॥७॥
विषय विकार मिटावो पाप हरो देवा।
"श्रद्धा" भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा ॥८॥

आर्य्य-समाज के नियम ।

—◌*◌—

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी अजर, अमर, अभय, नित्यपवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३—वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परमधर्म है ।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् और असत्य को विचार कर करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये। किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

———